

१५६ इतिहास और संस्कृति

(२) वे अत्यधिक प्रभावशाली व शक्तिसम्पन्न शासक हैं। उन्हें अर्धचक्रवर्ती अथवा त्रिखण्डाधिपति भी कहा गया है। जैन-भूगोल के अनुसार सम्पूर्ण देश को ६ खण्डों में विभाजित किया गया है। इनमें तीन खण्ड उत्तर भारत के तथा तीन खण्ड विन्ध्याचल (विजयाद्वंद्व पर्वत) से नीचे के अर्थात् दक्षिण भारत के। श्रीकृष्ण का द्वारका सहित सम्पूर्ण दक्षिण क्षेत्र में प्रभाव था, अतः उन्हें अर्धचक्रवर्ती कहा गया है।

(३) अर्धचक्रवर्ती शासक होने के कारण वे शक्ति, धनुष, गदा, चक्र, कृपाण, शंख और दण्ड आदि सात रत्नों के धारक थे।^५

(४) उनके कार्यों से अधर्म, अनाचार व अशान्ति का नाश होता है। वे देश में धर्म तथा न्याय की स्थापना करते हैं।

(५) वे अपने समान बली, शक्तिशाली व प्रभुत्व सम्पन्न शत्रु-राजा, जिसे कि जैन-परम्परा में प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण) कहा है; जो कि बुरी शक्तियों—अधर्म, अनाचार, अन्याय आदि को प्रश्रय देते हैं, हनन करते हैं। इस दृष्टि से श्रीकृष्ण का प्रतिद्वन्द्वी जरासन्ध था। उसके हनन से लोक में सर्वत्र प्रसन्नता छा जाती है और स्वयं देवगण उनका वासुदेव रूप में अभिनन्दन करते हैं तथा उन पर पुष्पवृष्टि करते हैं।

(६) वे अत्यधिक धार्मिक वृत्ति के हैं। धर्म प्रभावना में उनका पूर्ण योगदान रहता है। साथ ही राज्य, वैभव तथा प्रभुता के प्रति उनका मोह का भाव भी है, इसलिए तपस्या अथवा वैराग्य के महान् पथ के वे साधक नहीं बन पाते हैं।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि जैन-परम्परा में वासुदेव (नारायण) से तात्पर्य महान् पराक्रमी व अत्यधिक शक्तिसम्पन्न अर्ध चक्रवर्ती शासक से है, जो कि अपने असाधारण बल, पराक्रम व शक्ति के द्वारा अनाचारी और अत्याचारियों का उन्मूलन करके, पीड़ितों व दीन-दुखियों का उद्धार करते हैं और इस प्रकार धर्म की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करते हैं। उनका आदर्श मुख्यतः लोकरक्षा का है। अतः समाज में उनके वीर स्वरूप की पूजा होती है! स्पष्ट ही 'वासुदेव' शब्द का यह प्रयोग महाभारत में प्रयुक्त देवाधिदेव भगवान के पर्यायवाची शब्द 'वासुदेव' से पूर्णतः भिन्न है।

'वासुदेव' शब्द की इस अर्थ में प्रयुक्ति से ऐसी सम्भावना भी प्रकट होती है कि तत्कालीन भारत में वासुदेव एक विरुद्ध था, जिसे अत्यधिक पराक्रमी व शक्तिशाली शासक ग्रहण किया करते थे। श्रीकृष्ण

- (४) गंगा सिधुर्णइति वेयडहणेण भरहखेत्तम्मि ।
छक्खंडं संजादं ताण विभागं परुवेमो ।
उत्तर दक्खिण भरहे खंडाणि तिण्णि होति पतेवक्कं ।
दक्खिण तिय खंडेसु अजाखंडोत्ति मज्झिओ ॥

—तिलोयपण्णत्ति ४।२६६-६७

- (५) मत्ती कोदंड गदा चक्रकक्किणाणि संख दंडाणि ।
इय सत्त महारयणा सोहते अद्धचक्कीणं ॥ —वही ४।१४३४

ने यह विरुद्ध धारण किया अतः वे वासुदेव भी कहलाये। यह बात निरी सम्भावना नहीं है। इसके प्रमाण निम्न उल्लेखों में देखे जा सकते हैं :—

(अ) हरिवंश पुराण (भविष्य पर्व) में काशीराज पौंड्रक का कथानक आता है। इसके अनुसार जब श्रीकृष्ण कैलाश पर तपस्या कर रहे थे, तब पौंड्रक ने अपने साथी राजाओं को बुलाकर एक सभा की और उसमें घोषणा की, “कृष्ण, छल और धमण्ड से मेरी बराबरी कर रहा है। मैंने अपना नाम वासुदेव रखा है, इसलिए उसने भी अपना नाम वासुदेव रख लिया है। मेरे पास जो अस्त्र-शस्त्र हैं, वैसे ही नाम वाले अस्त्र-शस्त्र उसने भी धारण करना प्रारम्भ कर दिया है।” इस घोषणा के पश्चात अपने अधीनस्थ राजाओं को लेकर उसने द्वारका पर आक्रमण कर दिया। इस कथानक से यह स्पष्ट आभास होता है कि कृष्ण और पौंड्रक का संघर्ष मूलतः वासुदेव नाम धारण करने को लेकर हुआ।

(ब) जैन-मान्यता की बात ऊपर कही जा चुकी है। जैन-कथा के अनुसार श्रीकृष्ण द्वारका सहित दक्षिण भारत के प्रभावशाली अधिपति थे। उत्तर भारत में जरासन्ध उनकी टक्कर का राजा था। इसलिए श्रीकृष्ण व जरासन्ध की प्रतिद्वन्द्विता ने उग्र रूप धारण कर लिया। मूल जैन-स्रोतों के अनुसार तो महाभारत का युद्ध श्रीकृष्ण व जरासन्ध के मध्य लड़ा गया। कौरव-पाण्डवों ने विपरीत पक्षों से इसमें भाग लिया। इस युद्ध की समाप्ति श्रीकृष्ण द्वारा जरासन्ध-वध से होती है। इस अवसर पर देवताओं द्वारा श्रीकृष्ण का ‘वासुदेव’ रूप में अभिनन्दन करने तथा पुष्पवृष्टि करने का वर्णन जैन-पुराणों में हुआ है। इसी युद्ध के परिणामस्वरूप श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव को मगध के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया और इस प्रकार उत्तर भारत में भी अपने प्रभाव का प्रसार किया। ध्यान देने की बात है कि जैन-परम्परा में जरासन्ध को प्रतिवासुदेव कहा गया है, परन्तु शक्ति, पराक्रम व प्रभाव में दोनों को समान कहा गया है। इस विवरण से भी यही ध्वनित होता है कि कृष्ण-जरासन्ध की प्रतिद्वन्द्विता का आधार ‘वासुदेवत्व’ था, तभी तो कृष्ण की विजय पर उनके वासुदेव रूप में अभिनन्दित होने की बात कही गई है।

(स) घट जातक के अनुसार यह स्पष्ट है कि बौद्धों ने भी श्रीकृष्ण के लिए वासुदेव नाम ही प्रयुक्त किया है। बौद्ध-कथा में भी वासुदेव की शक्ति व पराक्रम का ही वर्णन है। कंस को मारकर उन्होंने अयोध्या के राजा को जीता और इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ाते हुए द्वारका जाकर अपनी राजधानी स्थापित की। इस उल्लेख से भी ‘वासुदेव’ के श्रेष्ठ व शक्तिशाली राजा के स्वरूप का बोध होता है।

इससे यही निष्कर्ष पुष्ट होता है कि अपने वास्तविक ऐतिहासिक रूप में देवकी-वासुदेव के पुत्र, यादव-कुल-शिरोमणि, वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण, द्वारका के शक्तिशाली अधिपति व एक प्रभावशाली राजा थे। उनके देवाधिदेव रूप में प्रतिष्ठित हो जाने पर कालान्तर में जो उनके साथ अनेक प्रकार की लीलाओं आदि की बातें जुड़ गई हैं, उनका श्रीकृष्ण के महान चरित्र से वस्तुतः कोई सम्बन्ध नहीं। अपने मूल रूप में द्वारकाधीश श्रीकृष्ण एक अलौकिक वीर पुरुष हैं और यही सम्भावना है कि उनकी वीर-पूजा को ही सर्वप्रथम प्रतिष्ठा मिली। जैन-साहित्य में उनकी वीर-पूजा को ही स्थान मिला है। चूँकि जैन-दर्शन किसी परम सत्ता (परमात्मा) के अस्तित्व को स्वीकार भी नहीं करता है, अतः उसके अवतार रूप में या स्वयं उसी के रूप में श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा जैन-साहित्य में सम्भव भी नहीं थी।

આચાર્ય પ્રવરણ અમિતેશ્વર આચાર્ય પ્રવરણ અમિતેશ્વર
શ્રી આનંદ ત્રી અન્થડુ શ્રી આનંદ ત્રી અન્થડુ

